झुमुर

- गौतम लामा

पश्चिम बंगाल का पुरुलिया क्षेत्र लोक-साहित्य व संस्कृति के मामले में हमेशा से ही समृद्ध रहा है। यह पश्चिम बंगाल का झारखंड सीमांतवर्ती नाच-गान-बाजोंवाला प्रदेश के रुप में परिचित है। वर्तमान में यह विश्वदरबार में 'छौउ-झुमुर का देश' के रुप में जाना जाता है। इसका मुख्य कारण इस प्रदेश का संबंध आजादी-पूर्व पूर्वी भारत के उस मानभूम जिला से होना है, जहाँ तत्कालीन साहित्य व संस्कृति को काफी लंबे समय तक राजा-महाराजा-जमींदारों का उत्साहपूर्ण संरक्षण में पुष्पित-पल्लवित होने का मौका मिला था। यही कारण है कि एक समय इस (मानभूम) क्षेत्र को पूरे बंगाल का सांस्कृतिक पीठ होने का गौरव प्राप्त था। आजादी के बाद इसे बिहार राज्य में मिला दिया गया और राज्यों के पुनर्गठन के समय इसके एक हिस्से को काटकर बंगाल में मिला दिया गया जो पुरुलिया जिला कहलाया। भले ही आज यहाँ राजा-महाराजा-जमींदार नहीं रहे, उत्सवों-पर्वों के दौरान गाँव-प्रांतर व अखड़ाओं में नाचनी-खेमटी-बाईजी नृत्यों की झलक कम ही देखने को मिलती है; बावजूद इसके लोक-समाज में लोक- संस्कृति की वैचित्र्यमयी धारा निर्बाध रुप से प्रवाहमान है। आज आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं का सहारा लेकर इस क्षेत्र की छौउ व झुमुर संस्कृति ने पूरे विश्व में सुनाम अर्जित किया हुआ है।

पुरुलिया जिले के लोक-समाज में आज भी लोक-संगीत की सहस्त्र धाराएँ प्रवाहमान है। यही कारण है कि यहाँ का सम्पूर्ण पाषाणमय-प्रदेश (पठारी प्रदेश) एक लोक-संगीतमय प्रदेश बन उठा है। यह प्रदेश "बारो मासे तेरो पारबोन" अर्थात् "वर्ष के बारह महीनों में तेरह पर्व" वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाला प्रदेश है। कहने का तात्पर्य है कि साल भर उत्सव धर्मिता की राग से संपृक्त रहना ही इस प्रदेश की विशिष्टता है। यहाँ के कलाकार लोकगीतों के धुनों से स्थानीय उत्सव व उससे संबंधित मेलों के प्रांगण को भाव-विभोर बनाये रखने के उपक्रम में साल भर जुड़े रहते हैं। यहाँ कलाकारों की कई गोष्ठियाँ हैं, जो निरंतर विवाह तथा अन्य सभी स्थानीय उत्सवों से संबंधित नृत्य-संगीत वाले हिस्से को संभाले रखने के कार्य में निरंतर लगे हुए हैं। इस पूरे प्रदेश की सबसे जनप्रिय व बहुप्रचलित लोक- संगीत का नाम है- 'झुमुर'। यहाँ के कलाकार सुर-ताल-छंद-नृत्य के मार्फत् बहुत लंबे समय से झुमुर गीतों की रचना करते आ रहे हैं।

झुमुर मूलतः एक बहुत ही प्राचीन लोक-संगीत है। कुछ विद्वान तो इसे पूर्व-वैदिककालीन संगीत भी मानते हैं। इसकी प्राचीनता की जड़े इतनी अधिक गहरी और बिखरी हुई हैं कि इसके उद्भव को किसी सन्-तारीख से स्थिर कर पाना अब तक संभव नहीं हो पाया है। इस संदर्भ में बंगाल की लोक-संस्कृति के विशिष्ट गवेषक किरीटि महतो जी का कहना है- "किसी वस्तु के इतिहास की जानकारी के अभाव में उसके विकास व तदंतर विवर्तन का यथार्थपरक रुपरेखा खींच पाना संभव नहीं हो पाता है। झुमुर के संदर्भ में प्रकृत सत्य यही है कि इसका प्रामाणिक इतिहास आज भी हमारे लिए अज्ञात व अंधकाराछन्न है।"[1] किरीटि

महतो जी के पूर्व के कुछ गवेषकों ने इसकी भाषा-संरचना, रस-छंद परिकल्पना व भाषा-भूगोल के आधार पर यह भी निष्कर्ष निकाला हुआ है कि यह मूलतः आजादी पूर्व पूर्वी भारत के मानभूम क्षेत्र से संबंधित उन आदिवासियों का लोक-संगीत है, जो संथाली, कुड़माली, सादरी, खड़िया, कुडुख, संभलपुरी आदि बोलियों से संबंधित थे। इस संदर्भ में डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य जी के कथन को देखा जा सकता है- "छोटा नागपुर से होते हुए समग्र मध्यभारत में गुजरात तक फैली आदिवासी जन-मानस वाले समाज में जो बहुत ही लंबे अरसे से पारंपरिक आदिवासी लोक-संगीत प्रचलित है, उसे ही साधारणतः झुमुर कहा जाता है।"[2] विद्वानों के लिए इसके उद्भव की समयसीमा को रेखांकित कर पाना भले ही टेढ़ी खीर हो, पर इसके उद्भव-स्थली के संदर्भ में लगभग सभी एकमत हैं। सभी ने मानभूम प्रदेश को ही इसका उद्भव-स्थल माना है। इस संदर्भ में गवेषक डॉ. दयामय मंडल जी के कथन को देखा जा सकता है- "मुझे लगता है कि आजादी के बाद भारतवर्ष तथा बंगाल में जिन लोक- संगीतों का प्रचार-प्रसार हुआ, उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय होने का श्रेय झुमुर को ही मिला है। इसकी जनप्रियता बंगाल, बिहार, उड़ीसा, झारखंड, गुजरात आदि राज्यों तक व्याप्त है। परंतु इसकी आदिभूमि मानभूम है।"[3]

झुमुर की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह एक पूर्णांग संगीत है क्योंकि इसमें गीत, वाद्य यंत्र एवं नृत्य तीनों का समाहार मिलता है। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ऐसा देखा जा सकता है कि कलाकार बनने को इच्छुक प्रार्थी यदि स्वयं को बेसुरा पाता है तो वह वाद्य-यंत्रों के वादन की ओर उन्मुख होता है और जब उसे उसकी भी बारीकियों को समझने में असुविधा होती है तो वह नृत्य-कला में पारंगत होकर एक स्वनामधन्य कलाकार बनने में सफल हो जाता है, पर झुमुर के कलाकारों के साथ ऐसी सुविधा नहीं है। इससे जुड़े कलाकार को तीनों-गीत रचने, वाद्य यंत्रों का वादन करने तथा नृत्य करने में निपुण होना ही पड़ता है अन्यथा उसे कोई भी उच्चकोटि का मंच ही नहीं मिलता है। नृत्य के साथ अतः संबंध के आधार पर झुमुर के कुछ भेद भी निर्धारित किये गये हैं। इस संदर्भ में डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य जी का कहना है- "इस अंचल में कुछ एक ऐसे कोटि के झुमुर का भी प्रचलित हैं, जिनका संबंध एक निश्चित प्रकार के नृत्य से है और वे नृत्यों के नाम के आधार पर ही जाने जाते हैं। जैसे- दाँड़शाली झुमुर, छौउ नृत्य का झुमुर, पत्ता नृत्य का झुमुर, खेमटि नृत्य का झुमुर, लाठी नृत्य का झुमुर, भादूरिया झुमुर आदि।"[4]

झुमुर का संबंध छोटा नागपुर से लेकर गुजरात तक के आदिवासी जनमानस के साथ होने के कारण इसके गीतों की भाषिक संरचना एवं पद-रचना में विविधता देखने को मिलती है पर जब बात पुरुलिया के झुमुर संगीत की हो तो इसकी भाषिक संरचना में बांग्ला भाषा के प्रभुत्व को देखा जा सकता है क्योंकि पुरुलिया लंबे समय से पश्चिम बंगाल का अभिन्न हिस्सा है। इसके बावजूद भी इन गीतों में कुड़माली, संथाली आदि स्थानीय बोलियों के शब्द आज भी स्वमहिमा के साथ मौजूद हैं। आज भी झुमुर-गीतकार बंगाली भाषा में स्थानीय बोलियों के शब्दों को मोतियों के सदृश पिरोकर ही गीतों की रचना करते हैं। यही कारण है कि एक ओर तो झुमुर गीतों ने अपनी लोकप्रियता बांग्ला भाषा से संबद्ध होने के कारण पूरे बंगाल में प्राप्त की है तो दूसरी ओर इसकी स्थानीय बोलियों से संबद्धता के कारण इसने आज भी अपनी आदि भूमि के लोगों से नाड़ी सदृश जुड़े रहने में सफलता भी पाई है।

झुमुर पुरुलिया के लोकजीवन का अभिन्न अंग है। पुरुलिया का सम्पूर्ण लोक ही इस संगीत के मार्फत उद्भासित होता रहता है। इसमें यहाँ के लोकजीवन के सभी पक्षों का चित्रण होता है। यही कारण है कि इसके गीत विषय-वैविध्यता की दृष्टि में काफी समृद्ध होते हैं। पुरुलिया का समाज आज भी मूलतः ग्रामीण समाज ही है। आजादी से पहले पुरुलिया ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज ही जमींदारी व्यवस्था से त्रस्त था। जमींदारों, जोतदारों एवं महाजनों की प्रवृत्ति को उजागर करने के संदर्भ में भारतीय लोकगीतों में अनेक पद मिलते हैं। झुमुर के पद इसका अपवाद नहीं है। इसमें भी ऐसे अनेक पद मौजूद हैं, जैसे झुमुर के निम्न पद में एक ग्रामीण व्यक्ति का कथन है कि नैतिक व सामाजिक रुप जब एक भले व्यक्ति को एक पत्नी के साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने की बात है तो फिर घर पर सौतन पर सौतन लानेवाला हमारा जमींदार भला व्यक्ति कैसे हो सकता है-

"जोमिदार भालो लोक लोय हे।

सोतिने सोतिने लियाई ना होय से कि घोर हे।"[5]

(भालो-भला, लोक-आदमी, लोय-नहीं, सोतिने-सौतन)

भारतीय समाज बहुत लंबे समय से दहेज प्रथा की मानसिकता से त्रस्त है। विशेषकर ग्रामीण समाज में तो इसकी स्थिति और भी अधिक भयावह है। भले ही पुरुलिया का संबंध आदिवासी लोकजीवन से रहा है, बावजूद इसके लोकजीवन में भी इसकी उपस्थिति एक जैसी ही है। यहाँ के ग्रामीण समाज में भी तथाकथित मूल समाज की तरह लड़कियों का विवाह उनके माता-पिता के लिए एक बहुत ही मारक समस्या है। लड़की के पिताओं को आज भी जरुरत पड़ने पर विवाह के लिए घर-जमीन को गिरवी रखना या फिर बेच देना भी पड़ता है। झुमुर गीत के एक पद में इस मारक स्थिति का वर्णन करते हुए गीतकार हरिदास कहते हैं कि दहेज देने के बाद ही जमाई (दूल्हा मिल पा रहा है। यह कैसी मारक हवा चल पड़ी है। साईकल, घड़ी, सारे बर्तन, पलंग, रेडियो, लड़की के लिए गहना तो स्वेच्छा से देनी ही पड़ रही है। इसके बाद भी दूल्हा सोने की अंगूठी के लिए रुष्ट हुआ जा रहा है। यदि घर पर इन सब के लिए धन नहीं है तो फिर घर-जमीन बेचना पड़ जा रहा है-

"टाका सोहो बिटि दिले पाबि जामाई के।

एकाले कि बोईछे हावा, दाय होलो बिटिर बिहा देवा

साईकेल घोड़ी लागे जौतुके ।।

गागरा हाँड़ी थाला बासोन, बिटि जामाई घुमाबार आसोन।

ओगुलो आर बोलबो काहाके ।।

घोड़ी लिबे रेडिओ लिबे, बिटिकेओ साजाते होबे।

ता पोरे मान कोरबे आँग्टिके ।।

नाईको जोदि टाका कोड़ी, तोबे बिकते होबे जोमि बाड़ी।

होरि दासे लागे बास भाड़ाके।"[6]

(टाका-रुपैया, सोहो-साथ, दिले-देने पर, पाबि-मिलेगा, बोईछे- बहना, जौतुके-स्वेच्छा से, थाला बासोन-थाली बर्तन, घुमाबार-सोने के लिए, आसोन-पलंग, ता पोरे-उसके बाद, नाईको-नहीं है, बिकते होबे-बेचना होगा)

अब जिस समाज में दहेज लेने की मानसिकता है, वहाँ लड़कियों को अपने ससुराल में भेद-भाव के सम्मुखीन होना तो आम बात है। तिस पर यदि ससुराल में ननद हो तो फिर विवाहिता वधू की स्थिति और भी अधिक दयनीय हो उठती है। स्थानीय बोली कुड़माली में कवि तुलसी द्वारा रचित झुमुर के इस पद में सद्यप्रसूता बहू की ऐसी ही कारुणिक दशा का चित्रण इस प्रकार मिलता है-

"छोवा काँदइ होरोलगोरोल, गोहाइले गोबोर भोरोल।

सासे नोनोदे रोंग देखा।

कि ना कोरबो मोउ एका ।।

माए बिटिक एके टेढ़ि, निछुउता ढेकि काँड़ि।

बोसि बोसि देखोत जेसन भेका ।।

खेति बाड़ि दूरोन देशे, भात लेइके जाम केसे।

चासेक कामटा चाँड़ा चाँड़ी, आर ना कोरिहा डेरि

तुलसिक दुखेक नाहि लेखा।।"[7]

(गीतकार तुलसी गाँव की एक वधू की दयनीय स्थिति का बखान उसकी ही जबानी करते हुए कहते हैं कि घर पर दुधमुँहा शिशु रो रहा है। उधर गोशाला में भी गोबर भर चुका है। उसकी भी सफाई करनी है। इधर सास और ननद का रंग देखते ही बनता है। वे चुपचाप पूरे दृश्य के दर्शक-आलोचक बने हुए हैं। तिस पर खेती के काम के कारण घर से बहुत दूर स्थित जमीन पर पतिदेव काम कर रहे हैं, जिनके लिए भोजन भी समय पर लेते जाना है। चूँकि पहली बारिश हो चुकी है, इसलिए खेती-बारी का काम भी तेजी से ही निपटाना जरुरी है। अतः वहाँ भी मुझे खाना लेकर समय पर पहुँचना है। अब अपने इन दुःखों का बखान किससे करूँ।)

पुरुलिया वनाच्छादित पठारी प्रदेश है। साल भर खेती योग्य भूमि का यहाँ अभाव है। यहाँ की बाईद व डाँगा भूमि में केवल वर्षा ऋतु के समय एक बार ही धान की खेती होती है। इसलिए वर्षा के आगमन के साथ ही यहाँ का ग्रामीण समाज खेती के लिए चहक उठता है। वर्ष के अन्य समय की तुलना में इस

समय लोग ज्यादा ही तरोताजा हो उठते हैं। सुबह तड़के ही उठकर गाँव के सभी बालक- पुरुष सुबह के लिए रात का बना भोजन खाकर खेतों में पहुँच जाते हैं। चूँकि झुमुर इस प्रदेश के लोकजीवन का संगीत है अतः इसके गीतों में इस तरह के सारे दृश्य मौजूद मिलते हैं। यथा-

"सोकाले उठि पुठि चुटि दुटि बोनाय लिबि।

खाये लिबि सोट सोईटा बासिटि। लोहोके धोरिबि आईड़ दुटि ।।

छुटु मुटु ढोकरा, हाल बाहे छोकरा।

भाईले भाईले चोले गेलो नामोकुलोहीर लोकेरा।।"[8]

(गीतकार नामोकुलो ही नामक गाँव के प्रातःकालीन दृश्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि गाँव के लोग तड़के सुबह उठकर थोड़ी सी पुठिया मछली की तरकारी बनाकर बासी भात बिना समय गँवाये खा लेते हैं। खाते ही बैलों को लेकर खेतों की ओर चल पड़े हैं। घर के सिर्फ बड़े ही नहीं छोटे बालक भी अपनी-अपनी क्षमतानुसार इसमें सहयोग दे रहे हैं। एकदम से छोटे बालक टोकरी ढोने में और अपेक्षाकृत बड़े बालकगण हल डोने में लीन हैं। इस प्रकार सुबह-सुबह ही गाँव के सारे पुरुष व बालक खेतों की ओर चल पड़े हैं।)

पुरुलिया के ग्रामीण समाज के लिए भादो महीना का बड़ा महत्व है क्योंकि भादो महीने की शुक्ल एकादशी के दिन यहाँ करम पूजा का आयोजन बड़े उत्साह के साथ किया जाता है और इससे जुड़ा एक महत्वपूर्ण उत्सव का नाम है- 'कोरोम-जावा'। यहाँ के समाज में यह मान्यता प्रचलित है कि अविवाहित युवतियाँ यदि उनके प्रिय देवता 'करम गुसाई' को पूजा के मार्फत संतुष्ट कर पाती है तो उन्हें मनचाहा वर के साथ उसके पूरे परिवार का कल्याण होता है। यही कारण है कि भादो महीने की शुरुआत होते ही यहाँ के कुर्मी, भूमिज, कुईरी, मालपहाड़ी, संथाली, बीरहड़ एवं मुंडा समाज की अविवाहित युवतियाँ करम गुसाई की पूजा की तैयारी में जुट जाती हैं। पूजा से एक दिन पहले वे घर-आँगन को अच्छी तरह से बुहारकर खड़िया मिट्टी से आँगन पर आल्पोना (पारंपरिक स्वस्तिक चिह्न) बनाती हैं। उसके बाद वे समूह मे जंगल जाती हैं और वहाँ से करम वृक्ष की शाखा लेकर आती हैं। उसी शाखा को धरती पर गाड़कर उसे पारंपरिक तरीके से सजाती हैं और पूजा के दिन उसे ही करम गुसाई के रुप में पूजती हैं। पूजा के दौरान वे किसी मंत्र का उच्चारण नहीं करती हैं, वरन् वे इस अवसर हेतु रचित झुमुर गीतों को सामूहिक रुप से नाचते हुए सारी रात गाती हैं। दूसरे दिन करम गुसाई को नाचते-गाते वे गाँव के निकट स्थित नदि में विसर्जित कर आती हैं। वास्तव में इस अवसर के झुमुर गीत प्रार्थना गीत होते हैं, जिसपर लोकधुन की थाप पड़ती है और पूरा का पूरा माहौल ही नाच उठता है। इसी प्रकार के एक झुमुर गीत के बोल हैं-

"आज रे कोरोम काल रे कोरोम गुसाई।

बोतो राखेछी हामरा सोबाई।।

भाई-बाप गेलो कोन देशे देशे।

राखबे गुसाई राजा बेशे।।"[9]

(कहने का तात्पर्य है कि हे करम गुसाई। हम सभी आज और कल आपकी पूजा में लीन रहेंगी क्योंकि आज और कल आपकी पूजा का ही पुनीत दिवस है। इस क्रम में हम सभी ने व्रत-उपवास रक्खा है। आप जानते ही हैं कि हमारे पिता एवं भाई रोजगार के लिए किन- किन देशों में पड़े हुए हैं। आपसे इतना ही निवेदन है कि वे जहाँ भी हैं, उन्हें राजा की तरह रखना।)

इस बात में कोई दो राय नहीं हो सकती है कि जनसंख्या वृद्धि एवं औद्योगिकीकरण ने भारतीय ग्रामीण जनसंख्या को स्थानांतरित कर उसे नगरी-शहरी दिहाड़ी मजदूर में बदलने में महती भूमिका निभाई है। कृषि-कार्य पर आश्रित ग्रामीण लोगों को जनसंख्या-वृद्धि के बरक्स जमीन के क्षेत्रफल में विस्तार न होने के कारण अपना पेट पालने के लिए नगरों-शहरों में बाध्यतावश जाना ही पड़ा क्योंकि सीमित भूमि में खेती कर बड़े परिवार का पेट पालना कष्टमय हो गया। थोड़े में ही संतुष्ट प्रकृति के सहचर आदिवासियों को अपनी जड़, जंगल व जमीन से बिछड़ना पड़ा। बिछड़ने की यह पीड़ा उनके लोकसंगीत में दर्ज मिलता है। पुरुलिया का लोकसंगीत इसका अपवाद नहीं है। चूँकि झुमुर यहाँ के लोगों का जीवन-संगीत है, अतः इसके गीतों में भी यह पीड़ा दर्ज मिलती है। इससे संदर्भित झुमुर गीत है-

"आमि रोइबो ना घोरे।

चाकरी कोरबो सुखे थाकबो चोल जाईगो शोहोरे ।।

कुलुर बोलोदेर मोतो काज आमि कोरी जोतो।

बापे बोले बेटा खाई घुरे फेरे।।

माएँ बोले मुँहचोरा बौउदी बोले कामचोर।

बोड़ो दादा भिनुर कोथा बोले बारे बारे।।

चाकरी कोरबो सुखे थाकबो, शाईया साड़ी किने दिबो।

तिनटि छेइयला कोरे थाकबो सुखेर संसारे।। "[10]

(इस गीत में गाँव के एक अविवाहित युवा की पीड़ा दर्ज है। वह घर की आर्थिक बदहाली से उत्पन्न परिस्थिति से परेशान हो उठा है। वह कहता है कि अब वह घर पर नहीं रहेगा। वह अब शहर जायेगा और वहीं नौकरी कर सुखपूर्वक दिन बितायेगा क्योंकि वह घर पर कोल्हू के बैल की तरह परिश्रम करता है, बावजूद उसके पिता उसे फाँकीबाज कहते हैं। माँ उसे मुँहचोरा बोलती है तो भाभी कामचोर। बात-बात पर उसे उसके बड़े भाई भिनु की कर्मठता की बातें सुनाई जाती हैं क्योंकि वह शहर में काम करता है। इसलिए अब मैं भी शहर जाऊँगा, नौकरी करूँगा, विवाह करूँगा और अपनी पत्नी को नई-नई साड़ी खरीदकर दूँगा। केवल तीन बच्चे ही लूँगा और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करूँगा।)

जब बात लोकगीतों की हो रही हो तो फिर उसमें प्रेम का पुट न हो, ऐसा तो असंभव ही है। विश्व के किसी भी प्रांत के लोकगीत की सबसे बड़ी खासियत ही प्रेम का स्थानीय रंग में सराबोर होकर प्रकट होना है। पुरुलिया का झुमुर भी इसका अपवाद नहीं है। इसके गीतों के बोल में भी प्रेम भाव स्थानीय रंग में डूबता-उतराता दिखता है। लोक-रंग की छटा लिए झुमुर का एक प्रचलित गीत है-

"एखोनो फूलकली आछे, देखो भ्रोमोर बोसो ना। फूटा फूले मधु मिले, आध फूटाय मेले ना।। कोचिकोचि फूलेर कूड़ी, गोड़ाय भेंगे दिओ ना। असोमोये भेंगे दिले, आर जोड़ा जाबे ना।। जोखोन फूलटि फूटे जाबे, तोखोन माना कोरबो ना। भालोबासा मोनेर आशा, बाकी किछु राखबो ना।।"[11]

(इसमें गाँव की एक किशोरी का एक वयस्क के प्रेम में पड़ जाने की मनोदशा का चित्रण है। किशोरी अपने प्रेमी से निवेदन करती हुई कहती है- मैं तो अभी फूलों की कली के सदृश हूँ, इसलिए तुम भ्रमर के सदृश मुझपर मत बैठो क्योंकि पूर्ण रूप से खिले फूल में ही भौरों को मधु मिलता है। अभी मेरा पूर्ण रूप से खिलने का समय आना बाकी है और इस स्थिति में तुम मुझपर बैठोगे तो मैं टूटकर आजीवन के लिए बिखर जाऊँगी। इसलिए तुम अभी धीर धरो पर मैं तुम्हें इतना आश्वासन देती हूँ कि जब मैं पूर्णरुपेण खिल उठूँगी तो तुम्हारी प्रेम विषयक सारी अभिलाषाओं को अवश्य पूरा करूँगी।)

जब गीतों में प्रेम है तो उसमें विरह का होना स्वभाविक ही है। लोकगीतों में अमूमन सावन का महीना (वर्षा ऋतु) और विरह का सीधा संबंध दर्शाया गया है। पुरुलिया के लोकजीवन में भी इस राग की उपस्थिति देखने को मिलती है। इस राग से संबंधित झुमुर के कई गीत हैं। उनमें से एक है-

"आउल बरसा ऋतु, पिया पोरो देश गे।

रातिया बितलि जागि, भाबी शुनी शेषगे।।

चोपोला चोमके घन, तारि उद्देश गे। अझोरे झोरिछे बूँदा, जोमि भिजि गेल गे।

हिया बाँधि पालोंके, दिया आछि ठेस गे।।

एमोन सोमोय आमार पिया, परदेश गे।।

द्विज हरिपद भोने, बोचोन निःशेष गे।

जिबोने मोरोने एका एकाई थाका बेश गे।।"[12]

(इस पद के गीतकार हरिपद हैं। इसमें एक प्रेम विरहिणी के मनोदशा का चित्रण है। विरहिणी कहती है- वर्षा ऋतु आ गई और मेरे पिया परदेश में ही हैं। सारी रात उन्हीं की याद मे जागते ही बीत रही है। रात में बिजली के चमकते ही उनका चेहरा सामने भासित हो उठता है। इतनी वर्षा हो चुकी है कि भूमि की

प्यास भी बुझ चुकी है। सारी रात मैं पलंग के सहारे नीचे बैठकर ही बिता रही हूँ। इस स्थिति में मुझे यही लग रहा है कि जीवन में शादी किये बिना अकेला रहना ही ज्यादा बेहतर होता।)

निष्कर्षतः ऐसा कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि झुमुर पुरुलिया के लोक रागों एवं धुनों से संपृक्त गीतों की माला है। यह पुरुलिया के लोगों का जीवन-संगीत है। इसमें यहाँ के लोकजीवन का हर एक पक्ष यहाँ के लोक-रागों में बँधकर झंकृत होता रहता है। कुल मिलाकर इसमें यहाँ का पूरा लोक ही अपनी आपूरित संवेदनाओं के साथ उद्भासित होता रहता है। इसकी इसी विशिष्टता के कारण ही यह मात्र पुरुलिया ही नहीं वरन् पश्चिम बंगाल के सम्पूर्ण पश्चिमी अंचल का एक लोकायत संसाधन के रुप में स्थापित हो चुका है।

संदर्भः

1. Mahato, Kireeti, Jhumur Gaan: Udbhav-Vikas O Biborton, Manbhum Lokgaan Shilpi Goshthi, Purulia, Edition: 2020, Page- 9

2. Bhattacharya, Dr. Ashutosh, Banglar Lok-sahitya (Vol-3), Calcutta Book House, First Edition: 1954, Page 134

3. Mandal, Dr. Dayamay, Puruliar Loksangeete Lokjibon: Anusandhan O Bisleson, Pragya Vikas Publication, Kolkata, First Edition: 2021, Page - 74

4. Bhattacharya, Dr. Ashutosh, Banglar Lok- sahitya(Vol-3), Calcutta Book House, First Edition: 1954, Page 185

5. Mandal, Dr. Dayamay, Puruliar Loksangeete Lokjibon: Anusandhan O Bisleson, Pragya Vikas Publication, Kolkata, First Edition 2021, Page - 80

6. Mahato, Haradhan, Aadi Rasakala Jhumur Padabali, D & P Graphics Pvt. Ltd., Kolkata, First Edition 2006, Page 104

7. वही, Page 100

8. वही, Page 86

9. Mandal, Dr. Dayamay, Puruliar Loksangeete Lokjibon: Anusandhan O Bisleson, Pragya Vikas Publication, Kolkata, First Edition: 2021, Page - 91

10. Mahato, Haradhan, Aadi Rasakala Jhumur Padabali, D & P Graphics Pvt. Ltd., Kolkata, First Edition: 2006, Page -99

11. वही, Page 103

12. वही, Page 125

- गौतम सिंह राणा

सहायक आचार्य, अछुराम मेमोरियल कॉलेज,

झालदा जिला पुरुलिया (पश्चिम बंगाल)